UGC - CARE LISTED

ISSN-2321-7626
Vol. XXVII, Year VIII
फरवरी-अप्रैल 2021

पाणिनीया
PĀṆINĪYĀ

त्रैमासिक - सान्दर्भिक - पुनरीक्षितशोधपत्रिका
(Quarterly Refereed and Reviewed Research Journal)

महर्षिपाणिनिसंस्कृत-एवं-वैदिकविश्वविद्यालयः, उज्जयिनी (म.प्र.)

UGC - CARE Listed

Vol. XXVII, Year VIII
ISSN-2321-7626
फरवरी-अप्रैल 2021

पाणिनीया

PĀṆINIYĀ

त्रैमासिक - सान्दर्भिक - पुनरीक्षितशोधपत्रिका
(Quarterly Refereed and Reviewed Research Journal)

महर्षिपाणिनिसंस्कृतवैदिकविश्वविद्यालयः
देवासमार्गः, उज्जयिनी, मध्यप्रदेशः, भारतम्
अणुसङ्केतः (E-mail) - utdpanini@gmail.com
अन्तर्जालपुटम् (Website) - www.mpsvv.ac.in

अनुक्रमणिका

संस्कृत - प्रभागः

1.	श्रीमद्देवीभागवते मणिद्वीपवर्णनम् डॉ.सोमनाथदाशः	1
2.	व्याकरण-शास्त्रे वर्णितानां परिभाषाणां सामाजिकोपयोगिता डॉ. दयालसिंहः	8
3.	रामायणे करुण एव रसो विशेषः डॉ. तुलसीदासपरौहा	13
4.	श्रीमद्भागवतपुराणे कर्मसिद्धान्तः डॉ. अखिलेशकुमारद्विवेदी	19
5.	ज्योतिष्टोमे दीक्षापरिमाणविचारः डॉ. संकल्पमिश्रः	26
6.	संस्कृत-व्याकरणशास्त्रे कर्मकारकम् - एकमध्ययनम् डॉ. सत्यप्रसादमिश्रः	31
7.	नारदप्रोक्ता गानगुणदोषाः डॉ. ऋषिराजपाठकः	38
8.	माघमहाकवेः नृपनीतिनैपुणी डॉ. राधावल्लभशर्मा	48
9.	नैरुक्तसमयालोके सायणीयग्वेदभाष्यभूमिका डॉ. विश्वबन्धुः	60
10.	वेदान्तदर्शने आत्मविभुत्वविमर्शः मोहनलालशर्मा	67
11.	वास्तुशास्त्रदृष्ट्या भू-विमर्शः डॉ. विजयकुमारः	72

हिन्दी - प्रभागः

12. बौद्ध एवं सांख्यदर्शन के विशेष सन्दर्भ में दुःखनिवृत्ति — 79
मुरलीधर पालीवाल

13. संस्कृत-कुमाउँनी-गढ़वाली और पञ्जाबी में नामधातु क्रियाएं — 90
सुनील जोशी

आंग्ल - प्रभागः

14. Role of Sanskrit Grammatical Model in — 99
The Making of Early Bengali Grammar
A Survey of Literature Written Between
18th and 19th Century AD.
Jay Saha

UGC - CARE Listed
फरवरी-अप्रैल, 2021

पाणिनीया
Vol. XXVII, Year VIII

बौद्ध एवं सांख्यदर्शन के विशेष सन्दर्भ में दुःखनिवृत्ति

मुरलीधर पालीवाल*

दुःखनिवृत्ति सभी दार्शनिक परम्पराओं एवं विचारों में प्राथमिक अथवा मूल जिज्ञासा है। क्या आस्तिक, क्या नास्तिक समस्त दर्शन प्रस्थानों की विचारसरणि का प्राथमिक बिन्दु दुःखापनोदन ही है। पाश्चात्य दर्शन परम्परा में भी इस विषय पर पर्याप्त चिन्तन मनन किया गया है। यह दुःखनिवृत्ति की प्रवृत्ति इस भूतल पर सामान्य से सामान्य जन और जीव की भी है।

यह दुःखनिवृत्ति की प्रवृत्ति संसार में दुःख की सत्ता को प्रमाणित करती है, जिसमें सभी दर्शनकार सहमत हैं, क्योंकि बिना दुःख के कोई उसे दूर करने के उपायान्वेषण में संलग्न नहीं होता है। यही बात सर्वदर्शनसंग्रहकार माधवाचार्य द्वारा भी उक्त है -

सर्वस्य संसारस्य दुःखात्मकत्वं सर्वतीर्थङ्करसम्मतम्।
तन्निविवृत्सुनां तेषां तन्निवृत्त्युपाये प्रवृत्त्यनुपपतेः॥[1]

अन्यथा बौद्धों की भी यह भावना है कि संसार में सब कुछ दुखः है 'सर्वं दुःखं दुःखम्'।[2] यही दुःख भगवान् बुद्धोपदिष्ट चार आर्यसत्यों में प्रथम आर्यसत्य है। 'संजुत निकाय' में भगवान् बुद्ध ने दुःख का बड़ा ही मार्मिक वर्णन उपस्थित किया है-

* सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राज.)

'भिक्षुओं! संसार अनादि है । अविद्या और तृष्णा से संचालित भटकते फिरते प्राणियों के आदि और अन्त का पता नहीं चलता। इस तरह भवचक्र में पड़ा प्राणी अनादिकाल से वारंवार जन्मता और मरता है। तो भिक्षुओं, क्या समझते हो इन चारों महासमुद्रों में पानी है, यह अधिक है अथवा यह जो संसार में वारंवार जन्म लेने वालों में प्रिय के वियोग और अप्रिय के संयोग के साथ रो-पीटकर आँसू बहाये हैं। भिक्षुओं, चिरकाल तक माता के मरने का दुःख सहा है, पुत्र के मरने का दुःख सहा है, सम्पत्ति के विनाश होने का दुःख सहा है, रोगी होने का दुःख सहा है। उन माता के दुःख सहने वालों ने पिता के दुःख सहने वालों ने संसार में बार-बार जन्म लेकर प्रिय के वियोग और अप्रिय के संयोग के कारण जो रो-पीटकर आँसू बहायें हैं, वे ही अधिक हैं, इन चारों महासमुद्रों का जल नहीं। यह क्यों ? भिक्षुओं, संसार अनादि है। अविद्या और तृष्णा से संचालित भटकते-फिरते जीवों के आदि का पता नहीं। इस प्रकार भिक्षुओं, दीर्घकाल तक दुःख का अनुभव किया है, तीव्र दुःख का अनुभव किया है, बड़ी-बड़ी हानियाँ सही हैं, श्मशान भूमि को पाट दिया। अब तो भिक्षुओं, सभी संस्कारों से निर्वेद प्राप्त करो, वैराग्य प्राप्त करो, मुक्ति प्राप्त करो।'[3]

भगवान् बुद्ध के अनुसार दुःख की व्याख्या इस प्रकार है - 'हे भिक्षुओं! यह दुःख प्रथम आर्य सत्य है। जन्म लेना भी दुःख है, वृद्धावस्था भी दुःख है, मरण भी दुःख है। शोक, पश्चात्ताप, उदासीनता तथा परिश्रम भी दुःख है। अप्रिय वस्तु के संयोग में दुःख है, प्रिय के वियोग में भी दुःख है। जो इष्ट वस्तु को नहीं पाता तो वह भी दुःख है। संक्षिप्ततया ये पांचों स्कन्ध (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार तथा विज्ञान) भी दुःख है।' (इंद खो पन भिक्खवे, दुक्खं अरिय सच्च। जाति पि दुक्खा, जरापि दुक्खा, मरणम्पि दुक्खं, सोक-परिदेव-दोमनस्सुपायासापि दुक्खा, आप्पियेहि सम्पयोगो दुक्खो, पियेहि विप्पयोगो दुक्खो, याम्पिच्छं न लभति तम्पि दुक्खं, संख्यितेन पञ्चूपादनक्खन्धापि दुक्खा।')[4] भगवान् बुद्ध के अनुसार यह पूरा संसार दुःखमय है और जब तक यह संसाररूपी भवन निरन्तर जल रहा है तब तक हास व आनन्द की अनुभूति कैसे सम्भव है ? (को नु हासो किमानन्दो निच्चं पज्जलिते सति।)[5]

सांख्यकारिका ग्रन्थ में भी सांख्यशास्त्र की प्रवृत्ति का मूल कारण दुःखत्रय के आत्यन्तिक विनाश को ही बताया गया है -

दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातके हेतौ।[6]

यह दुःखत्रय है - (1) आत्मसम्बन्धी 'आध्यात्मिक दुःख' जो कि शारीरिक (वात, पित्त एवं कफ की असंतुलित अवस्था) एवं मानसिक (काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, विषाद आदि) भेद से द्विप्रकारक है। इसे 'आन्तरदुःख' भी कहते है, क्योंकि आन्तरकारणों से इसका आविर्भाव होता है। शेष दो दुःख बाह्यप्रभावों से उत्पन्न होने के कारण 'बाह्य दुःख' कहलाते हैं। (2) दूसरा 'आधिभौतिक दुःख' जरायुज (मनुष्य, पशु, मृग आदि), अण्डज (पक्षी, सर्प, मछली आदि), स्वेदज (जुएँ आदि) एवं उद्भिज्ज (वृक्ष आदि) नामक चार प्रकार के प्राणिसमुदाय से उत्पन्न होता है । (3) आधिदैविक दुःख 'देव' (देवयोनिविशेष - यक्ष, राक्षस, विनायक आदि) या 'दिव्' (आकाश) से उत्पन्न होता है। शीत, उष्ण, वर्षा, झंझावत, वज्र, उल्कापात आदि इसके उदाहरण हैं।

दुःख है तो दुःख का कारण भी होगा, क्योंकि इस संसार में कुछ भी अकारण घटित नहीं होता। प्रत्येक कार्य का कोई न कोई प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष कारण अवश्य विद्यमान रहता है। दुःख का कारण ही भगवान् बुद्धोपदिष्ट चार आर्यसत्यों में द्वितीय आर्यसत्य 'दुःख-समुदय' है।[7] 'दुःख-समुदय' का अर्थ है - दुःख का उत्पन्न होना।

बौद्धदर्शन में 'प्रतीत्यसमुत्पादचक्र' को 'दुःख-समुदय' का कारण कहा गया है। यह 'प्रतीत्यसमुत्पादचक्र', 'द्वादशाङ्ग चक्र' है, जिसे भवचक्र, संसारचक्र अथवा जन्ममरणचक्र भी कहा जाता है। इस द्वादशाङ्ग प्रतीत्यसमुत्पादचक्र में भी प्रथम अङ्ग 'अविद्या' को दुःख का मूल कारण कहा गया है।[8] यह 'प्रतीत्यसमुत्पाद' बौद्धदर्शन का केन्द्रीय व आधारभूत सिद्धान्त है। 'प्रतीत्यसमुत्पाद' को 'कार्यकारणवाद' भी कहा जाता है, क्योंकि 'प्रतीत्य' का अर्थ है 'अपेक्षा रखकर' एवं 'समुत्पाद' का अर्थ है, 'उत्पत्ति', अतः 'प्रतीत्यसमुत्पाद' का अर्थ हुआ - कारण की अपेक्षा रखकर अथवा कारण पर निर्भर होकर कार्योत्पत्ति - हेतुप्रत्ययापेक्षो भावानामुत्पादः, प्रतीत्यसमुत्पादार्थः।[9]

इस 'प्रतीत्यसमुत्पाद' के द्वादश अङ्ग या निदान कारण-कार्य रूप में चक्रवत् घूमते रहते हैं। प्रथम अङ्ग द्वितीय अङ्ग का कारण है, द्वितीय अङ्ग तृतीय अङ्ग का, इस प्रकार क्रमशः चक्र चलता रहता है। ये द्वादशाङ्ग निम्नलिखित हैं -

(1) अविद्या (2) संस्कार (3) विज्ञान (4) नाम-रूप (5) षडायतन (6) स्पर्श (7) वेदना (8) तृष्णा (9) उपादान (10) भव (11) जाति और (12) जरा-मरण। मरण इस चक्र की समाप्ति नहीं है, अपितु मरण के बाद भी अविद्या और कर्मसंस्कार रहते हैं, जो नवीन जन्म के हेतुभूत बन जाते हैं और पुनः पुनः जन्ममरणचक्र अर्थात् द्ववादशाङ्ग भवचक्र चलता रहता है[10] -पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननीजठरे शयनम् ।[11]

इन बारह अङ्गो में प्रथम दो (अविद्या और संस्कार) पूर्वजन्म से सम्बद्ध हैं, अन्तिम दो (जाति तथा जरा-मरण) भविष्य के पुनर्जन्म से सम्बन्धित हैं और मध्य के आठ (विज्ञान से भव तक) वर्तमान जन्म से सम्बद्ध हैं।[12] इन अङ्गो में पूर्व अङ्ग उत्तर अङ्ग का कारण होता है और उत्तर अङ्ग पूर्व अङ्ग का कार्य होता है। पूर्व अङ्ग है तो उत्तर अङ्ग अनिवार्य रूप से उत्पन्न होगा और इस प्रकार यह चक्र गतिमान रहेगा, तब तक जब तक कि इस चक्र के मूल-कारण 'अविद्या' (प्रथम अङ्ग) का अस्तित्व है। अब क्रमशः एक-एक अङ्ग का वर्णन इस प्रकार है-[13]

(1) **अविद्या -** यह 'प्रतीत्यसमुत्पाद चक्र' का प्रथम अङ्ग है, जो इस पूरे द्वावादशाङ्ग भवचक्र का मूलकारण है। 'अनवस्था दोष' न हो एतदर्थ 'अविद्या' को ही दुःखरूप समस्त संसार का मूल कारण कहा गया है। इस अविद्या की निवृत्ति निर्विकल्प निरपेक्ष अपरोक्षानुभूति द्वारा ही सम्भव है, जिसे 'बोधि' या 'प्रज्ञा-पारमिता' कहा जाता है। यही निर्वाण तत्त्व है, जो नित्य शुद्ध चैतन्य या विज्ञानरूप है। जब अविद्या द्वारा निर्विकल्प नित्य शुद्ध चैतन्य या विज्ञान आवृत कर लिया जाता है तब वह नित्य शुद्ध चैतन्य या विज्ञान अविद्या-कुलषित, अशुद्ध व सीमित हो जाता है।

(2) **संस्कार -** 'अविद्या' से 'संस्कार' नामक द्वितीय अङ्ग उत्पन्न होता है। संस्कार से आशय संस्कारों के रूप में संचित 'कर्म संस्कार' से है।

(3) **विज्ञान -** संस्कार से विज्ञान उत्पन्न होता है। यहाँ 'विज्ञान' से आशय अविद्या और कर्मसंस्कारों से कलुषित, सीमित, सापेक्ष एवं सविकल्प विज्ञान से है।

(4) **नाम-रूप-** विज्ञान से 'नाम-रूप' की उत्पत्ति होती है। 'नाम' का अर्थ है 'मानसिक' और 'रूप' का अर्थ है 'भौतिक'। इस प्रकार 'नाम-रूप' का

अर्थ हुआ मानसिक भावों तथा भौतिक पदार्थों के संयोग से निर्मित यह शरीरी। अविद्या-संस्कार-निर्मित कारण-शरीर से आवृत 'विज्ञान' कर्मफल भोगने के लिए 'शरीर' (स्थूल और सूक्ष्म) की अपेक्षा रखता है। इस शरीर में विज्ञान भी प्रविष्ट रहता है।

(5) **षडायतन -** 'नामरूप' से षडायतन की उत्पत्ति होती है। इसके अन्तर्गत पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ व एक मन, संयुक्त रूप से षडायतन कहलाते हैं। ये छः आयतन या इन्द्रियाँ भोग करने के साधन हैं।

(6) **स्पर्श -** उपर्युक्त षडायतनों के कारण विषयों से सम्पर्क होता है, जिसे 'स्पर्श' कहते हैं। इन षडायतनों या इन्द्रियों का विषयों से सम्पर्क होना नैसर्गिक प्रवृत्ति है।

(7) **वेदना -** स्पर्श से 'वेदना' उत्पन्न होती है, जो तीन प्रकार की मानी गई है - सुखरूप, दुःखरूप और उदासीन। 'वेदना' का अर्थ है इन्द्रियानुभव।

(8) **तृष्णा -** वेदना से तृष्णा उत्पन्न होती है। तृष्णा का तात्पर्य है विषयोपभोग या सांसारिक सुखों के उपभोग की तीव्र इच्छा।

(9) **उपादान -** तृष्णा से 'उपादान' उत्पन्न होता है। उपादान का अर्थ है तृष्णा से भी बढ़कर विषय-सुखों की प्रति अत्युग्र आसक्ति।

(10) **भव -** उपादान से 'भव' उत्पन्न होता है। भव का अर्थ है भोगासक्ति के कारण फलोन्मुख कर्मों के फल-भोग हेतु जन्म और पुनर्जन्म लेने का संकल्प।

(11) **जाति -** भव से 'जाति' उत्पन्न होती है। जाति का अर्थ होता है - 'जन्म'। इसमें पुर्नजन्म भी संयुक्त है।

(12) **जरा-मरण -** जाति से 'जरा-मरण' उत्पन्न होता है। 'जरा-मरण' यहाँ दुःख के प्रतीक रूप में प्रयुज्य है। जरा का अर्थ वृद्धावस्था है जो दुःखदायी होती है। महाकवि अश्वघोष ने वृद्धावस्था को रूप हरने वाली, बल का नाश करने वाली, शोक की जननी, रति की मृत्यु, स्मृति का नाश और इन्द्रियों का शत्रु कहा है -

रूपस्य हन्त्री व्यसनं बलस्य शोकस्य योनिर्निधनं रतीनाम्।
नाशः स्मृतीनां रिपुरिन्द्रियाणामेषा जरा नाम ययैष भग्नः॥[14]

साथ ही 'मरण' तो अपने-आप में बहुत बड़ा दुःख ज्ञात ही है।

महर्षि कपिलप्रणीत सांख्यदर्शन के पच्चीस तत्त्वों में दुःख का अनुभविता 'पुरुष' को बताया गया है -

तत्र जरामरणकृतं दुःखं प्राप्नोति चेतनः पुरुषः।[15]

'पुरुष' के इस दुःखभोग की पृष्ठभूमि में पुरुष का ही 'अज्ञान' या 'अविवेक' उत्तरदायी है। 'विवेक' का अर्थ है दो अलग-अलग वस्तुओं के अलग-अलग होने का ज्ञान। ये दो वस्तुएँ हैं - प्रकृति और पुरुष। ये दोनों वस्तुतः परस्पर भिन्न-भिन्न हैं, लेकिन संसार-अवस्था में दोनों एक प्रतीत होते हैं, यही पुरुष का अविवेक हैं। पुरुष जब तक अपने चैतन्य स्वरूप से अपरिचित रहता हुआ, प्रकृति, बुद्धि आदि चौबीस जड़ पदार्थों से सम्बन्ध रखता है तब तक उसे दुःखानुभूति होती रहती है। संसार-अवस्था में ही यह अवास्तविक सम्बन्ध बना रहता है, जिसका वर्णन सांख्यकारिका में इस प्रकार किया गया है -

तस्मात्तत्संयोगादचेतनं चेतनावदिव लिङ्गम्।
गुणकर्तृत्वेऽपि तथा कर्त्तेव भवत्युदासीनः॥[16]

उपर्युक्त अवास्तविक सम्बन्ध के विषय में अज्ञान के कारण ही पुरुष स्वयं को इन प्रकृति आदि जड़ पदार्थों से, बुद्धि या मन से भिन्न नहीं समझता है और प्रकृति या बुद्धि आदि के इन सुख-दुःखों को अपने पर आरोपित करता है तथा दुःखी होता है। वस्तुतः सुख-दुःख बुद्धि के ही धर्म हैं और बुद्धि ही सुख-दुःख को भोगती है, लेकिन पुरुष अज्ञानतावश या अविवेकितावश बुद्धि के साथ अपना सम्बन्ध मानता हुआ स्वयं को ही सुखों तथा दुःखों का भोक्ता मानता है। साथ ही सुखोपभोग भी दुःख से अमिश्रित नहीं होता है। इसलिए विवेकी जन सुख को भी दुःख की ही श्रेणी में गिनते हैं और उसे भी छोड़ने का ही उपदेश देते हैं -

कुत्रापि कोऽपि सुखी। तदपि दुःखशबलमिति दुःखपक्षे निःक्षिपन्ते विवेचकाः।[17]

इस अविवेक की अवस्था में पुरुष की दशा कठोपनिषद् के निम्नलिखित मन्त्र के अनुसार वारंवार जन्म-मरण के चक्र वाली बनी रहती है -

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥[18]

दुःख के स्वरूप एवं उसके होने के कारणों को समझ लेने के उपरान्त दुःखनिवृत्ति के उपायों की जिज्ञासा होती है। बौद्धदर्शन में ये उपाय चतुर्थ आर्यसत्य 'दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपद्' के अन्तर्गत आते हैं। चार आर्यसत्य क्रमशः निम्नलिखित हैं - (1) दुःख (2) दुःखसमुदय (3) दुःखनिरोध और (4) दुःखनिरोगामिनी प्रतिपद् । चतुर्थ आर्यसत्य को 'आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग' की संज्ञा दी गई है।[19] इसके अन्तर्गत दुःखनिवृत्ति या निर्वाणप्राप्ति के मार्ग के आठ अङ्ग बताए गए हैं-[20]

(1) **सम्यक्-दृष्टि -** कुशल और अकुशल प्रकार के दोनों कर्मों को भली-भांति जानना, बुद्ध-वचनों में श्रद्धा और आर्य-सत्यों का ज्ञान सम्यक् दृष्टि के अन्तर्गत आते हैं।

(2) **सम्यक् संकल्प -** आर्यमार्ग पर चलने का दृढ़ निश्चय सम्यक् संकल्प है।

(3) **सम्यक् वाक् -** सम्यक् वाक् से तात्पर्य वाणी की सत्यता से है। वाणी से कभी भी असत्य या मिथ्या भाषण न किया जाए, यही इस अङ्ग का उद्देश्य है।

(4) **सम्यक् कर्मान्त -** इसके अन्तर्गत हिंसा, व्यभिचार, चोरी इत्यादि निंदनीय व अनाचरणीय कर्मों से बचते हुए 'पंचशील' संज्ञा में कथित पांच कर्मों - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और मादक पदार्थों का असेवन का अनुष्ठान अपेक्षित व करणीय है। यह 'पंचशील' गृहस्थों व भिक्षुओं दोनों के लिए आचरणीय है। भिक्षुओं के लिए इनके अतिरिक्त और पांच शीलों का भी विधान हैं, ये हैं - असमय भोजन, माला-धारण, संगीत-नृत्य आदि, स्वर्ण-रजत आदि और सुखद शय्या का त्याग। इस प्रकार भिक्षुओं के लिए 'दशशील' संज्ञक कर्म आचरणीय हैं।

(5) **सम्यक् आजीव -** आजीविकोपार्जन प्रत्येक मनुष्य के जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक है। इस आजीविका को परपीड़ा, हिंसा और छल-कपटपूर्ण व्यवहार न करते हुए न्यायोचित तरीके से प्राप्त करना, सम्यक्

आजीव है।

(6) **सम्यक् व्यायाम -** 'व्यायाम' का अर्थ यहाँ 'प्रयत्न' अथवा 'पुरुषार्थ' से है। सम्यक् व्यायाम के अन्तर्गत अकुशल कर्मों का त्याग व कुशल कर्मों का उपार्जन किया जाना अपेक्षित हैं। इन्द्रियों पर संयम साधना, बुरी भावनाओं को रोकना तथा शुभ भावनाओं के उत्पादन का प्रयत्न एवं उन्हें निरन्तर बनाए रखने के कार्य सम्यक् व्यायाम हैं।

(7) **सम्यक् स्मृति -** स्मृति का अर्थ स्मरण है। काय, वेदना, चित्त तथा धर्म के वास्तविक स्वरूप को जानना तथा उसकी स्मृति सदैव बनाए रखना नितांत आवश्यक है। इसके अन्तर्गत भोग्य वस्तुओं तथा काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ आदि भावों की निरन्तर अनित्यता और अशुचिता की भावना किया जाना अपेक्षित है।

(8) **सम्यक् समाधि -** चित्त की एकाग्रता को समाधि कहा गया है, जिसमें निर्विकल्प प्रज्ञा की अनुभूति होती है। इसमें समाधिस्थ भिक्षु क्रोध, लोभ, आलस्य, चाञ्चल्य, पछतावा, सन्देह इत्यादि भावों से उपरत स्थिति में होता है।

भगवान् बुद्ध ने उपर्युक्त आठ अङ्गो वाले अष्टाङ्गिक मार्ग या दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपद् को 'मध्यमा प्रतिपद्' या मध्यम मार्ग की संज्ञा भी प्रदान की है। यह भोगविलास और शरीर को अत्यन्त कृश कर देने वाली तपस्या के बीच का मार्ग है।[21]

इस अष्टाङ्गिक मार्ग के आठ अङ्गो को बौद्धदर्शन के 'त्रिरत्न' प्रज्ञा, शील और समाधि में भी अन्तर्भूत किया गया है। सम्यक् दृष्टि और सम्यक् संकल्प 'प्रज्ञा' में, सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्मान्त और सम्यक् आजीव 'शील' में तथा सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि को 'समाधि' में अन्तर्निहित किया गया हैं।[22] यह 'त्रिरत्न' निर्वाण प्राप्ति का मार्ग बतलाया गया है। साथ ही निर्वाण की ही स्थिति दुःखों से आत्यन्तिक निवृत्ति भी है।

उपर्युक्त 'आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग' के सम्यक् आचरण से 'प्रतीत्यसमुत्पाद द्वादशाङ्गचक्र' या भवचक्र का कारणों सहित नाश हो जाता है और निर्वाण या परमप्राप्तव्य की प्राप्ति हो जाती है। यह निर्वाण-स्थिति भी बौद्ध दर्शन के सम्प्रदायों

हीनयान व महायान में अलग-अलग मानी गई है। हीनयान में निर्वाण को दुःख का अभाव मात्र कहा गया है जबकि महायान में उसे आनन्दरूप बताया गया है।[23]

सांख्यदर्शन का भी मूल उद्देश्य दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति है, जिसमें लौकिक उपाय और वैदिक उपाय पूर्णतया दुःखों से मुक्ति दिलाने में असमर्थ व सांख्य दर्शनसम्मत उपाय समर्थ बताया गया है -

दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातके हेतौ।
दृष्टे साऽपार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात् ॥
दृष्टवदानुश्रविकः सह्यविशुद्धिक्षयातिशययुक्तः।
तद्विपरीतः श्रेयान् व्यक्ताव्यक्तज्ञविज्ञानात् ॥[24]

इस दर्शन में दुःख का अनुभविता पुरुष होता है, जो स्वभावतः नित्यमुक्त होने के बावजूद प्रकृति या बुद्धि के साथ अज्ञानतावश अपना सम्बन्ध मानने के कारण दुःख बन्धन में फंसा रहता है। इस दुःख-बन्धन से बचने का उपाय इस बन्धन के हेतुभूत प्रकृति-पुरुष के भेदज्ञान स्वरूप अज्ञान को नष्ट कर देने से है। इस अज्ञान का नाश विवेकज्ञान से सम्भव है। विवेकज्ञान से तात्पर्य है प्रकृति और पुरुष का पार्थक्यज्ञान । सांख्यमतानुसार प्रकृति का ही बन्धन व मोक्ष होता है तथा पुरुष का बन्धन और मोक्ष वास्तविक न होकर पुरुष में आरोपित हैं -

तस्मान्न बध्यतेऽद्धा न मुच्यते नापि संसरति कश्चित् ।
संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः॥[25]

जब पुरुष प्रकृति के साथ अपने अज्ञानतामूलक सम्बन्ध की वास्तविकता को समझ जाता है, तब वह मुक्त हो जाता है। सांख्यदर्शन के मतानुसार प्रत्येक पुरुष के साथ प्रकृति का घटक लिङ्गशरीर अनादिकाल से सम्बन्धित रहता है। यह सम्बन्ध अविवेकमूलक है, जिसे विवेकज्ञान से समाप्त किया जाता है। पुरुष को इस बन्धन से मुक्त करने में स्वयं प्रकृति उत्सुक रहती है व पुरुष को अपना स्वरूप दिखलाती है -

औत्सुक्यविनिवृत्त्यर्थं यथा क्रियासु प्रवर्तते लोकः।
पुरुषस्य विमोक्षार्थं प्रवर्तते तदव्यक्तम् ॥

रङ्गस्य दर्शयित्वा निवर्तते यथा नृत्यात् ।
पुरुषस्य तथात्मानं प्रकाश्य विनिवर्तते प्रकृतिः॥[26]

इस प्रकार पुरुष जब प्रकृति के स्वरूप को देख लेता है तो उसमें विवेक-ज्ञान के कारण तत्त्वज्ञान उत्पन्न हो जाता है। वह स्वयं को कर्त्ता व भोक्ता न मानते हुए विशुद्ध कैवल्य को प्राप्त कर लेता है -

एवं तत्त्वाभ्यासान्नास्मि न मे नाहमित्यपरिशेषम् ।
अविपर्ययाद् विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम् ॥[27]

कैवल्यज्ञान के पश्चात् पुरुष प्रारब्धकर्मों के भोग तक शरीर धारण किये रहता है -

सम्यग्यज्ञानाधिगमाद् धर्मादीनामकारणप्राप्तौ।
तिष्ठति संस्कारवशाच्चक्रभ्रमिवद् धृतशरीरः॥[28]

शरीर नाश होने के उपरान्त पुरुष दुःखों से सर्वथा व सर्वदा मुक्त होता हुआ ऐकान्तिक व आत्यन्तिक उभयविध कैवल्य को प्राप्त हो जाता है -

प्राप्ते शरीरभेदे चरितार्थत्वात् प्रधानविनिवृत्तौ।
ऐकान्तिकमात्यन्तिकमुभयं कैवल्यमाप्नोति॥[29]

तुलनात्मक रूप से सांख्यदर्शन भी बौद्धदर्शन के हीनयान सम्प्रदाय के निर्वाण स्वरूप की तरह निर्वाण में दुःख का आत्यन्तिक अभाव ही स्वीकृत करता है,आनन्द या सुख की स्थिति को नहीं। सांख्यदर्शन की इस मान्यता के पीछे दो कारण है - एक तो सुख-दुःख सापेक्ष हैं तथा दूसरा पुरुष स्वभावतः त्रिगुणातीत है व सुख सत्वगुण का कार्य है। इस प्रकार बौद्ध एवं सांख्यदर्शन दोनों का ही दुःखनिवृतिमार्गनिरूपण सरल, अनुपम व अनूठा है। इनमें से मनुष्य किसी भी मार्ग का अनुसरण कर अपने परम प्राप्तव्य को पा सकता है।

सन्दर्भ

1. माधवाचार्य, सर्वदर्शनसंग्रह, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1964 ई., बौद्धदर्शन-8वीं कारिका के पश्चात्
2. या. मसीह, तुलनात्मक धर्म- दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, पृ. 90

3. बलदेव उपाध्याय, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, चौखम्बा ओरियण्टालिया, वाराणसी, 1979 ई., पृ. 173
4. बलदेव उपाध्याय, बौद्धदर्शन, शारदा मंदिर, बनारस, 1946 ई., पृ. 64
5. सं. सत्यप्रकाश शर्मा, धम्मपद, साहित्य भण्डार, मेरठ, 1972 ई., 11/146
6. सांख्यकारिका, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1990 ई., कारिका 1
7. बलदेव उपाध्याय, बौद्धदर्शन, पृ. 65
8. चन्द्रधर शर्मा, भारतीय दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, नईदिल्ली, 1998 ई., पृ. 49
9. वही, पृ. 50
10. वही, पृ. 51
11. सं. कल्याणलाल शर्मा, आदिशङ्कराचार्यस्य स्तोत्रसञ्चयः, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफिस, वाराणसी, 2005 ई., पृ. 368
12. चन्द्रधर शर्मा, भारतीय दर्शन, पृ. 52
13. वही, पृ. 52-53
14. बुद्धचरितम् , चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1962 ई., 3/30
15. सांख्यकारिका, कारिका 55
16. वही, कारिका 20
17. सांख्यसूत्र, वेंकटेश्वर यंत्रालय, मुम्बई, सं. 1962, 6/7-8
18. ईशादि नौ उपनिषद् , गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2074, कठोपनिषद् 1/2/5
19. चन्द्रधर शर्मा, भारतीय दर्शन, पृ. 49
20. रामदेव साहू, भारतीय दर्शन, श्याम प्रकाशन, जयपुर, 2003 ई, पृ. 119-120
21. सं. सत्यप्रकाश शर्मा, बौद्ध प्रज्ञा-सिन्धु, न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन, दिल्ली, 2006 ई., पृ. 263
22. वही, पृ. 263
23. हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, भारतीय दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली, 2006 ई., पृ. 142
24. सांख्यकारिका, कारिका 1-2
25. वही, कारिका 62
26. वही, कारिका 58-59
27. वही, कारिका 64
28. वही, कारिका 67
29. वही, कारिका 68

●●